साहित्य

हकीकत, चुनौतियां और संभावनाएं

राम आह्लाद चौधरी

Scanned by CamScanner

साहित्य : हकीकत, चुनौतियां और संभावनाएं

राम आह्लाद चौधरी

परिवर्तन शाश्वत सत्य है; इस बात पर विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। चाहे जिस शिविर के विद्वान हों, सभी विद्वानों ने परिवर्तन को स्वीकार करते हुए उसकी प्रक्रिया पर अपने-अपने दृष्टिबोध के जरिये विचार किया है, वह विचार कितना सही और सटीक है, इसका मूल्यांकन दर्शन के आधार पर इतिहास करता है। इतिहास के पास यह क्षमता है, यही कारण है कि परिवर्तन की गति पर विचार करने वाले विद्वानों ने एक सिरे से इतिहास को खारिज करने की कोशिश की है। यदि समाज से इतिहास को खारिज कर दिया जाता है, तो नियंत्रणकरने वाली ताकतों को वर्तमान पर काबिज होने में सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं, ताकि भविष्य को अपने अनुकूल चलाने का प्रयास कर सकें। विचार की इस पद्धति के अन्तर्गत वर्चस्व कायम करने कीभावना छिपी होती है, जो साहित्य और समाज के खिलाफ जाती है। यह अलग बात है कि इस सच को सामने लाने में साहित्यकारों को कठिन परिश्रम करना पड़ता है। इस परिश्रम के बिना पूरे समाज को वक्र रेखा पर खड़ा करना आसान नहीं है। वैसेसाहित्यकारों से लेकर पत्रकारों तक अपने-अपने तरीके से प्रयोग-दर-प्रयोग करते हैं, यह भी बात उभरकर सामने आती है कि पत्रकार क्यों साहित्यिक दुनिया में हस्तक्षेप करने लगे हैं, प्रश्न यह भी उठाया जाता है कि रचनाकारों को पत्रकारिता के क्षेत्र में क्यों नहीं आने दिया जाय? आलोचना-समालोचना का दौर जारी रहता है। रचनाकार अपनी सृजनशीलता के जरिये इस बहस में शामिल होते हैं।

बहस सच को समझने और समझाने का सबसे बड़ा साधन है। पर जब इसे साध्य बना दिया जाता है, तब संकट पैदा होता है। संकट यही है कि सच के नाम पर सफेद झूठ या अर्द्धसत्य प्रस्तुत किया जाता है। चर्चित और प्रभावशाली व्यक्तियों को इस कार्य में किसी-न-किसी तरह का उपाय खोजना पड़ता है तथा प्रभावमंडल तैयार करते हुए सत्य की रोशनी को मंद कर दिया जाता है। जहां बहस के जरिये सच को और प्रज्वलित करना उचित है, वहीं सच को दबाने की प्रवृत्ति इन दिनों हर भाषा के साहित्य में बढ़ी है। यही कारण है कि इस प्रवृत्ति के शिकार हो गये साहित्य के सिद्धांतकारों को परिवर्तन की गति तेज लगती है। कौन-सा समय ऐसा था, जब परिवर्तन की गति धीमी थी? हर काल में परिवर्तन अपनी सुनिश्चित गति से होता है। उस गति को मापने के लिए न मंत्र है और तंत्र है। इसी गति की वजह से हर तरह के मंत्र और तंत्र का निर्माण या विनिर्माण हुआ है। कौन नहीं जानता है कि जब सवार हुए यात्री को अपनी मंजिल की दूरी का पता होता है, तब वह यात्री मंजिल पर जल्दी पहुँचने के लिए अपनी गति को तेज कर सकता है।

Scanned by CamScanner

गति तेज करने की इच्छाशक्ति किसी के पास हो सकती है, पर मात्र इच्छाशक्ति होने से गति नहीं बढ़ जाती है। दुनिया की गति इच्छा पर निर्भर नहीं करती है, वह गति परिस्थितियों पर निर्भर करती है। गति और स्थिति के बीच जो समन्वय करने की प्रक्रिया से अवगत नहीं होते, उन्हें ऐसा लगता है कि गति बढ़ गयी है। समाज के हर क्षेत्र में गति अपने ढंग से चलती और बदलती है, जो जीवन का सबसे बड़ा सच है। इस सच को उत्पादन के साधन नियंत्रण करते हैं और उत्पादन की पूरी प्रक्रिया पर जो छल-बल के साथ नियंत्रण कायम करने में सक्षम होने की इच्छाशक्ति रखता है, वही वर्चस्व कायम करने की कोशिश करने लगता है। वह नियम-कानूनों के जरिये अपनी शर्तों की झड़ियाँ लगाने का प्रयास करता है। जनता खासकर शिक्षित जनता की चित्तवृति पर वह काबिज होने का प्रयास करता है। इसी प्रयास के जरिये वह आगे बढ़ने और स्वप्निल भविष्य बनाने की गारंटी देता है।

साहित्यकार-पत्रकार-सृजनकार अपने विचारों के जरिये उस स्वप्निल भविष्य की जांच करता है कि क्या सचमुच साहित्य या साहित्यिक प्रतिवेदन के जरिये भविष्य बेहतर हो सकता है। इतिहास यह भी बताता है कि किस-किस कालखंड में किन-किन महाप्रभुओं ने अपनी प्रभुता कायम करने के लिए 'आभासित सत्य' का सहारा लिया है। दरअसल झूठ की बुनियाद पर खड़ी दीवारें अधिक दिनों तक नहीं टिक पाती हैं। सृजनशीलता उन दीवारों की बुनियाद हिलाने के लिए कदमताल नहीं करती है बल्कि दुनिया के कान में सिर्फ एक सच बतलाती है कि उनकी बुनियाद झूठ है। यह भी सही है कि उस 'झूठ' का प्रचार बड़ी तेजी से होता है।

दरअसल प्रचार एक तरह से पाखंड है। इस पाखंड से सृजनशीलता जूझती है। इसी दौरान विकास को हर आयाम मिलता है तथा उस विकास का लक्षण सामने आने की जद्दोजहद करता है; सृजनशीलता उसी सूत्र को पकड़कर आगे बढ़ने की तैयारी करती है। उसकी गति को पकड़ने की ताकत किसी में नहीं होती, यही कारण है कि बड़ा-बड़ा निजाम देखते-देखते ढह जाता है। फिर लिखने वाले उसके पतन के कारण खोजकर अपनी बुद्धिमत्ता जाहिर करना चाहते हैं, क्योंकि पतन के कारण खोजने वाले वैसा निजाम तैयार नहीं कर सकते और जब निजाम तैयार नहीं कर सकते, तब निजाम के गिरने के कारणों पर आलोकपात कर अपने मन को संतुष्ट करने का प्रयास करते हैं। हर निजाम के गिरने के हजारों कारण हो सकते है; पर मुख्य हैं – पहला भीतरी और दूसरा बाहरी।

विद्वानों ने कहा है कि पतन के बाहरी कारण उतने जानलेवा नहीं होते हैं, जितना कि भीतरी कारण। सृजनशीलता उन दोनों कारणों की तलाश करते हुए समय विशेष के संदर्भ में कुछ मुख्य कारणों को खोजने का प्रयास करती है। इस प्रयास से सृजन का मुख्य रंग दिखता है। यही रंग चुनौतियों को स्थापित करता है। चुनौतियाँ परिवर्तन के साथ-साथ आती हैं। खासकर यह परिवर्तन कार्य-कारण का होता है। विधेयवादी विद्वानों ने अपने मतों से इसे अति

Scanned by CamScanner

सहज कर दिया है। इस पर काफी चर्चाएं हुई हैं। जब देखा गया कि समय के बदलते हालात ने उस सिद्धांत पर प्रश्न चिह्न लगा दिया, तब उस सिद्धांत की खामियों को भी सामने लाने की कोशिशें की गयीं। कभी वे कोशिशें सार्थक हुईं, तो कभी उन कोशिशों को निरर्थक साबित करने का प्रयास किया गया। इस चीर-फाड़ में जिन्दगी को क्या मिला यह एक सवाल है।

यदि चुनौतियों से टकराते हुए संभावनाओं की तलाश नहीं की जायेगी तथा उन संभावनाओं को जब तक हकीकत का जामा पहनाने का प्रयास समाज के हित में नहीं किया जायेगा तब तक आने वाले समय के लिए संदेश नहीं दिया जा सकता है। यही संदेश दरअसल सृजन का आह्वान है। इसी आह्वान के बल पर समाज हर लाइलाज बीमारी का उपचार मुहैय्या कराने के लिए प्रयासरत रहता है। उपचार करने की विधि चाहे जो हो, लोग यही चाहते हैं कि बीमारी दूर हो। समाज की बीमारी को दूर करने का साधन सृजन नहीं है, बल्कि सृजन बीमारी को चिह्नित करने का सबसे महत्वपूर्ण विजन है, जो विजन कलम के सिपाही के पास होता है। यही विजन बदलने का काम करता है। जो इस विजन की निंदा करते हैं या इस विजन को नकारने का प्रयास करते हैं, दरअसल विजन को वे गलत ढंग से छेड़ने का प्रयास करते हैं; जिसका कोई खास प्रभाव लक्षित नहीं होता है।

यही कारण है कि आशीर्वाद के बल पर फूलने-फलने वाले चरित्र का हश्र बहुत जल्दी हो जाती है; २१वीं सदी में भी उसी का महत्व सामने आने लगा है, जिसने संघर्ष को अपने पथ का पाथेय बनाया है। वैसे वित्तीय पूंजी के दबाव ने उस पाथेय में अपना हिस्सा मांगना शुरू किया है, जिसे वसूली या तोलाबाजी की संज्ञा देना अपराध नहीं होगा।२१वीं सदी ने अपराध को जीवन का वस्तुनिष्ठ उपादान साबित करने की जो जंग आरंभ की है, यह निश्चिततौर से एक भयानक सवाल है। आखिर इस बढ़ते अपराध की गति क्या है और उसकी मंजिल कहां है? इससे समाज को किस तरह बचाया जाय, यह सोचने की बात है। चिंतक इस दिशा में लगे हुए हैं, शुभबुद्धि सम्पन्न व्यक्ति निश्चित रूप से आशा की किरन खोज निकालेंगे।

दु:ख का कारण बुद्ध को मिल गया पर इस समाज से दु:ख दूर नहीं हुआ, दु:खी लोगों की संख्या जरूर बढ़ गयी। चारों तरफ दु:ख ही दु:ख है। इससे भी ज्यादा भयानक यह है कि दु:ख देने वालों की संख्या में काफी इजाफा हो गया है, कोई बाप बनने के नाम पर दु:ख देता है, तो कोई बेटी बनने के चलते दु:ख झेलती है, तो कोई बेवजह दु:ख देता है। सवाल है कि दु:ख से टकराने वाला क्यों दु:खी होता है। जीवन एक धारा है, जो दु:ख और सुख नामक दो किनारों के बीच से गुजरता है ;सिर्फ गुजरता ही नहीं है बल्कि उन दोनों यानी दु:ख-सुख से टकराता है। इसी टकराव के चलते जीवन आगे बढ़ने की ऊर्जा ग्रहण करता है। ग्रहणशीलता की यही पहचान हर काल के सृजन में अपने लिए जमीन सुरक्षित करता है। इसलिए वह पहचान पर अपना ज्यादा समय नष्ट नहीं करती है बल्कि क्या करना है, उस पर

Scanned by CamScanner

ज्यादा गंभीर दिखती है। सही अर्थों में यही गंभीर संदेश है, जिसे सृजनशील व्यक्ति अपने-अपने ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। वैसे सुनने में यह भी आता है कि अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य पर खतरा है। इस तरह के खतरे पहले भी थे और आज भी हैं। आने वाले कल में भी इस खतरे की पूरी संभवनाएं हैं, पर सृजन की गति जारी रहेगी। क्या इस गति से समय चलता है, कौन जानता है? अभी तक किसी पत्रकार या साहित्यकार का ध्यान इधर क्यों नहीं गया है?

सही अर्थों में परिवर्तन की सारी चुनौतियों को स्वीकार करना ही संभवनाओं को ~~रेखांकित करने~~ की सच्चाई है तथा इस सच्चाई के आधार पर जिंदगी को सजाना सृजनशीलता का संदेश है। इस संदेश को २१वीं सदी में स्थापित करने के साथ-साथ सृजनशीलता के हर पहलू को कामयाब करना चाहे वक्त की मांग न हो, पर रचनाकर्म की पहचान जरूर है। रचनाकर्म अपनी पहचान की शुद्धता पर जितना ध्यान केंद्रित करता है, उससे कहीं अधिक इस सवाल पर निर्भर करता है किउसमें गति है या नहीं; जिंदगी गति का नाम है, जिसे सृजनशीलता संवारने की एक चेष्टा करती है। यह सच है कि इस चेष्टा का मूल्यांकन कठिन है और मूल्यांकन से भी अधिक उसे झेलना और कष्टसाध्य है। समाज के प्रसिद्ध चिंतकों का मानना है कि लिखना कठिन है पर उससे भी कठिन उसे झेलना है।

सृजनशीलता दरअसल जिंदगी को झेलती ही नहीं है, बल्कि वह जिंदगी को आलोकित करती है। पहले कहा जाता था कि साहित्य जीवन की आलोचना है, आज इस आलोचना के संदर्भ की व्याख्या करते हुए यह बताया जाता है कि साहित्य जिन्दगी की रोशनी है। वर्तमान में यह रोशनी खतरे में है, इस पर भी टिप्पणी की जाती है। दरअसल खतरों के बीच ही जिन्दगी चलती है; जहां जोखिम नहीं है, वहां जिन्दगी का भैरवी तान भी नहीं है। साहित्य उसी तान का लिपिबद्ध दस्तावेज है, जो एक सवाल के साथ हाजिर होता है –'कब रात बसर होगी।' चुनौतियों और संभावनाओं के बीच संदेश देना ही सृजनशीलता का दायित्व है; यही उसकी प्रतिबद्धता भी है।

साहित्य की बुनियाद सौन्दर्य-प्रेम है। सुन्दरता, भव्यता और मानवता के पक्ष में लगातार वकालत करना साहित्यकारों का वैशिष्ट्य है। व्यक्तिगत अनुभव और ज्ञानात्मक विवेक जीवन के कैनवस को रंगों से सजाने का काम करते हैं। दरअसल जिन्दगी की रंगत को पहचानना और उसे करुणा की भावभूमि पर स्थापित करना लेखकों का फर्ज है। इस फर्ज को वक्त की मांग के अनुसार प्रासंगिक बनाना चुनौतियों को एक तरह से आत्मसात करना है। महान कैनवस तभी कालजयी बनता है। जब परिस्थितियों की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए एक ऐसा विकल्प प्रस्तुत करने की जद्दोजहद की जाती है; जहां भाषा विचार को सुन्दरता देती है, कल्पना मानस को वाणी से सम्पन्न करती है और अनुभूति से जीवन दृष्टि पाता है।

Scanned by CamScanner

जीवन, अनुभूति और संवेदना के त्रिकोणात्मक प्रेम के बीच सामंजस्य बैठाना लेखन जगत की सबसे बड़ी चुनौती है। इन चुनौतियों को स्वीकार करने का सीधा मतलब है सृजनशीलता के दरवाजे को खटखटाना। सिर्फ मानवता की रक्षा के लिए नहीं, सौन्दर्य-प्रेम के लिए नहीं; बल्कि एक रहने लायक दुनिया बनाने के लिए। जिन्दगी सिर्फ जीने का नाम नहीं है, बल्कि दूसरों को अपने साथ जिंदा रखने का नाम है। हाथ छुड़ाने से नहीं, हाथ थामने से रिश्ता बनता है और जो एक बार बन जाता है वह लाख खलल पड़ने के बावजूद कयामत के अन्तिम क्षणों तक बना रहता है।

साहित्य में विकल्प प्रस्तुत करने की अद्वितीय क्षमता होती है, जो कयामत आने के बावजूद बरकरार रहती है। यही एकमात्र कारण नहीं है, जिसके बल पर साहित्य चुनौतियों का सामना करता है, दरअसल साहित्य की बुनियाद इतनी मजबूत होती है, जिस पर चाहे जितना बड़ा प्रासाद बना डाले, जहां हर किसी को सिर छिपाने की जगह मिल जाय। बदलाव को समझना और उसके अनुसार परिस्थितियाँ पैदा करना साहित्य की बड़ी विशेषता है, उस विशेषता की वजह से साहित्य भविष्य में आने वाले संकट को न केवल सुनता है बल्कि उस संकट का विकल्प तैयार करता है। साहित्य जब विकल्प प्रस्तुत करता है, तब वह एक प्रक्रिया से गुजरता है और वह प्रक्रिया मानव जीवन को हरे पेड़ को हरा और चांदनी रात को रात कहना सिखाती है। उस प्रक्रिया का ऐतिहासिक संदर्भ होता है तथा दार्शनिक भाव लोक को वह प्रक्रिया स्थापित करती है। इसलिए वह प्रक्रिया जन-मानस के बीच साहित्य को अकेला नहीं छोड़ती है। वह प्रक्रिया अकेलेपन को दूर करते हुए जन-मानस की भावना को बड़े फलक पर स्थापित करती है। यदि कोई इस प्रक्रिया के आधार पर साहित्य को इतिहास और दर्शन के पीछे चलने वाला जत्था मानता है, तो यह उसकी नासमझी ही होगी।

साहित्य न किसी के आगे चलता है और न किसी के पीछे। साहित्य पूरे समाज को ऊर्जस्वित करता है। जहां आर्थिक विकास और राजनीतिक दमक-दपट हांफने लगती है, वहां साहित्य पूरे समाज को आलोक पथ पर संघर्ष का पाथेय लेकर न्यौता देता है। इस पाथेय की महिमा पर आज किसी ने प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया और भविष्य में भी किसी के पास इतनी क्षमता नहीं है कि साहित्य के मर्म और कर्म पर प्रश्न-चिह्न लगा पाये। साहित्य किसी सरहद को नहीं मानता है। साहित्य की सरहद क्षितिज से ज्यादा व्यापक है। व्यापकता को अपने में अंटाने का काम साहित्य ही करता है। सदा चुनौतियों का सामना करते हुए गतिशील और मानव हितैषी विकल्प प्रस्तुत करना सच्चे साहित्य का मकसद है। सच्चा मकसद मानव-जीवन को संघर्षरत बनाता है। संघर्षरत-जीवन ही इस समाज के आलोक स्तम्भ हैं तथा डूबते लोगों के हाथों के तिनके हैं।

साहित्य किसी-न-किसी रूप में वाणी प्रस्तुत करने का प्रयास है। इस प्रयास के दरम्यान साहित्य को विविध चरणों से गुजरना पड़ता है। विद्वानों ने उन चरणों को प्रक्रिया के

Scanned by CamScanner

रूप में देखने की कोशिशें की हैं। वे कोशिशें निश्चित रूप से सार्थक और सफल हैं, हालांकि उन कोशिशों पर बहस है, बहस को जीवंत बनाने के नाम पर तर्क-वितर्क का जाल भी फैलाया जाता है। यदि उस तर्क-वितर्क में समझदारी नहीं होती है या ईमानदारी नहीं है, तो तर्क-वितर्क तीन कौड़ियों के बन जाते हैं। पर समझदारी-ईमानदारी के साथ-साथ नैतिकता हो तो वे रचनाशीलता के साथ-साथ समाज को रौशन कर देते हैं। उस रोशनी में यह भी साबित होता है कि विरोध के बीच अस्तित्व बनता है। १९वीं-२०वीं शताब्दियों के विश्व-साहित्य में प्राणशक्ति खोजने का प्रयास करने पर यही मिलता है कि विरोधों के बीच सदा संघर्षशीलता को नयी रोशनी से रौशन करने के दौरान ही व्यक्तित्व-कृतित्व का सच्चा विकास हुआ। भारतीय मनीषा ने बार-बार अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इस सच को स्थापित करने का प्रयास किया है कि सच और सब कुछ न्यौछावर करने का कोई विकल्प नहीं हो सकता है। यह मानवीय गुण का अमूल्य रत्न है। इस रत्न की पहचान और पहुँच विश्व-इतिहास की आलोकवर्तिका है, जो अंतिम क्षण तक विश्व को जग-मग करती है।

उल्लेखनीय है कि पिछले पंद्रह-बीस सालों में साहित्य की बुनियाद पर जोरदार प्रहार हुए हैं। उन प्रहारों के सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष हैं। दोनों की चर्चाएं साहित्य की अमूल्यनिधियां हैं। उन चर्चाओं से जो निचोड़ निकलता है, वही पथ का पाथेय है। मानव सभ्यता यदि विकास का इतिहास है, तो यह मानने में विद्वानों को क्यों आपत्ति होगी कि साहित्य ही मानव सभ्यता का पाथेय है। इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि साहित्य के अलावा और किसी विषय का कोई महत्व नहीं है। विज्ञान-कला-वाणिज्य ने मुख्य रूप से सरहदों को मिलाया है। सच तो यह है कि इन विषयों ने भौगोलिक सरहदों को खत्म कर मानवीयता का झंडा ऊँचा किया है। साहित्य ने किसी -न–किसी विचार को बल दिया है। इस पर हजारों-हजार सवाल किये गये हैं। दरअसल सवाल करना ही किसी चुनौती का मुकाबला करने की पहली शर्त है। चुनौतियों को समझने का सरल और सहज उपाय सवाल करना है। सवाल खुद-ब-खुद एक जवाब है। लेकिन पिछले पंद्रह-बीस सालों में सवाल करने का सिलसिला बंद हुआ है। ऐसा लगता है कि शब्द को टांक दिया गया हो। शब्द और वाक्य को सहज बनाने का जो प्रपंच पैदा हुआ, उससे कविता गीत-ग़ज़ल सहित उन तमाम विधाओं को कुंद कर दिया गया है, जिन विधाओं के बल पर पूरा समाज आगे बढ़ने का स्वप्न देखता था। सही अर्थों में मानवीय संवेदनाओं और अनुभूतियों को साहित्य के जरिये जिन्दगी का जामा पहनाया जाता है।

जिन्दगी को संघर्षरत करने के सिलसिले में साहित्य का आभामंडल बनाने के लिए सृजन की खास परम्परा रही है। उस परम्परा में ऐतिहासिक संदर्भ इस तरह समाये रहते हैं, जिस तरह आकाशरूपी थाली में तारे जगमगाते हैं। साहित्य सदा आह्लादकारी शक्तियों को समन्वित करने का सतत् प्रयास करता है। विजन सम्पन्न विवेकवान व्यक्तियों के मुंह का

Scanned by CamScanner

निवाला साहित्य है। आज साहित्य की परिभाषाएं बदली जा रही हैं। साहित्य के सम्बन्ध में यह कहा जा रहा है कि साहित्य न प्रतिवाद है और न प्रतिरोध - यह बताया जा रहा है कि साहित्य खाये-पीये-अघाये लोगों के लिए शब्द-क्रीड़ा है। क्या कारण है कि उन खाये-पीये-अघाये लोगों को जल-क्रीड़ा करते-करते जलाशय से बाहर निकलकर शब्द-क्रीड़ा के गलियारे में आने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है।

समकालीन साहित्य को मुनाफे का जब जरिया बनाया जायेगा, तब मुनाफा अर्जित करने वालों या पुरस्कार-प्रचार के लिए मुनाफाखोरों के पीछे खड़े होने वालों की तादाद लम्बी होगी। इस तरह के जुगाड़ू लेखकों की रचनाओं को सर्वश्रेष्ठ बताने की अंधी होड़ शुरू होना स्वाभाविक है। दरअसल समकालीन रचनाओं के समक्ष पुरस्कार और प्रचार की दीवारें खड़ी हुई हैं। समकालीन रचनाओं को पुरस्कार के तराजू पर तौलने की कुचेष्टा जारी हुई है। और पुरस्कार कौन देता है और क्यों देता है – इसकी पड़ताल किये बिना पुरस्कार के लिए सृजन करने की घटनाओं से मानवीय चेहरे कलंकित हुए। सड़ी-गली व्यवस्था को बदलने वाले ही सृजन से जुड़ते थे। सृजनशीलता का अर्थ जीवन की आलोचना होती है। पर अब उसे बदलकर लाभ और लोभ को साहित्य का पर्याय मानने का कुचक्र शुरू हुआ है। किताबें कहां से छप रही हैं; छपने के स्थान को प्रमुखता देकर लेखक की रचना को प्राथमिकता देने की समस्याओं ने समकालीन साहित्य के सृजन-पथ पर गतिरोध पैदा किये हैं। एक तरह से समकालीन साहित्य का कारपोरेटीकरण आरंभ हो चुका है।

समकालीन साहित्य का मूल्यांकन खरीददारी के आधार पर आरंभ हुआ है। यह एक भयानक संकट है। बेहतरीन रचनाओं को कबाड़खानों में फेंक दिया जाता है, जबकि जय-जयकार करने वाली रचनाओं को 'सदियों की सर्वश्रेष्ठ' रचना के रूप में गिनाया जाता है। जब से साहित्य का कारपोरेटीकरण शुरू हुआ है, तब से अच्छी रचनाएं नहीं आ रही हैं। वोट की राजनीति करने वालों को चारों तरफ महिमा-मंडित किया जा रहा है। जनता के दर्द को समाज में नहीं आने दिया जा रहा है। बाजार के हवाले से समकालीन सृजनता को आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया जा रहा है। सृजन की दुनिया में त्रास-संत्रास और त्रासदी को बड़े पैमाने पर व्याप्त किया गया है।

समकालीन साहित्य को मूल्यांकन के आधार पर रेखांकित नहीं किया जाता है। बिक्री के आधार पर समकालीन साहित्य की श्रेष्ठता साबित करने की कुचेष्टा की जाती है, उसमें भी सरकारी खरीददारी को ही श्रेष्ठता का मानदंड बताया जाता है। इस मानदंड की कसौटी क्या है, उससे कौन अपरिचित है। इस २१वीं सदी में क्या यह बतलाने का अवकाश है कि पूंजी की मार ने किस तरह इस दुनिया को बर्बाद किया है। बड़े-बड़े महारथियों ने किस तरह निन्यानवे प्रतिशत व्यक्तियों के निवालों को छीना है। क्या इस छिनताई को अपराध नहीं कहा जा सकता है। अपराध की परिभाषा भी बदल दी गयी है। साहित्य में इस अपराध से सम्बन्धित

Scanned by CamScanner

कितनी रचनाएं आती हैं। उन रचनाओं के पाठक नहीं हैं। कुछ प्रकाशक अपना लेखक तैयार करने के सिलसिले में समकालीनता के नाम पर जहर फैला रहे हैं। साम्प्रदायिक सम्प्रीति-सौहार्द्र की भावना को लहूलुहान कर घृणा-नफरत को तरजीह देने में जुटे हैं।

मानव के अधिकारों को स्थापित करने के नाम पर जनतंत्र का गला घोंटने की गूंज चारों तरफ विद्यमान है। वीर-पुरुषों के हाथों में कागज की तलवारें हैं, जो छाया-युद्ध लड़ते हैं। इस युद्ध में उन्हें विजयी घोषित किया जाता है, उन्हें मसीहा बताया जाता है। उनके रथ के पहिये सड़क के गड्ढे में नहीं फंसते हैं। लाशों के ढेर लगाने वालों की वंदना में हाथ जोड़ने वालों तथा जय-जयकार करने वालों को सच्चा साहित्यकर्मी मानने का अभियान शुरू हुआ है। इस अभियान के तहत बड़ी-बड़ी गलतियां होती हैं। इसमें सबसे बड़ी कमजोरी भी उभरकर सामने आती है। यदि यह अभियान इसी तरह चलता रहा, तो सृजन का तार-तार होना अस्वाभाविक नहीं होगा। नैतिकता-नीतियों को धत्ता बतलाते हुए सृजनशीलता के क्षेत्र से कल्पना और उद्भावना की छंटनी की जाती है। कल्पना को पंगु बनाने का खेल जोर-शोर से चल रहा है।

साहित्य को कुप्रचार का पर्याय बनाने के लिए साहित्यिक सृजनशीलता से प्रतीक-व्यंग्य-विद्रूप को बाहर निकालने का एक के बाद एक षडयंत्र किया जाता है। समकालीन साहित्य को प्रवृत्तिपरक बतलाने की होड़ में सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों पर पर्दे डालने का अभियान जारी है। चारों तरफ निराशा पैदा करने की कवायद चल रही है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि सच्चे साहित्य प्रेमियों-सृजनकर्त्ताओं ने अपने-अपने हथियार डाल दिये हैं। सच तो यह है कि समकालीन साहित्य की विविध विधाओं ने समाज के बदलाव को पहचानने का नया औजार तैयार किया। अपने पक्ष में वर्गीय संतुलन को बदलने का नया रास्ता उसने अख्तियार किया है। इस रास्ते पर चलते-चलते जीवन की विविधताओं को पहचानने की जरूरत है। इसके बिना जिन्दगी को आलोकित करना कठिन है। जिन्दगी की वास्तविकता को जानने से परिस्थितियों को बदलने में मदद मिलती है तथा सही हस्तक्षेप करना संभव होता है।

संभावनाओं की तलाश करना ही सृजनशीलता की पहली शर्त है। यह काम ज्ञान की धरती पर होता है। रचनाकारों के समक्ष यह चुनौती उत्पन्न हुई है कि वर्तमान संकट से बाहर निकलने के लिए कौन-सा रास्ता अपनाया जाय, सबको साथ लेकर चलने में मानव-समाज का कल्याण है। लेकिन आज सबकी बात करने वालों का अभाव दिखता है। व्यक्ति अपनी तरफ ज्यादा मुड़ चुका है। यही कारण है कि धार अब वह करिश्मा नहीं दिखा पा रही है, जिस धार की वकालत पहले की जाती थी। रचनाकार वस्तुतः जनता का वकील है, जो परम्परा की अदालत में जन अधिकारों को स्थापित करने के लिए वकालत करता है, ताकि जनता को सिर्फ जीने का अधिकार दिला सके। पर जनता को जीने का अधिकार नहीं मिल पा रहा है।

Scanned by CamScanner

रचनाकार इस सच को अच्छी तरह जानते हैं, जब तक समाज से आर्थिक विषमता दूर नहीं होती है, तब तक इस वर्तमान समाज को रहने लायक बनाना मुश्किल है।

समाज को मात्र रहने लायक बनाना ही वर्तमान साहित्य का सबसे बड़ा काम है। इस दिशा में खासकर साहित्य आगे बढ़ रहा है। कहानी-कविता-उपन्यास-नाटक सहित विविध विधाओं पर गहरायी से विचार किया जाता है, तो यह सच सामने उभरकर आता है कि आज अभिव्यक्ति पर सबसे बड़ा हमला है। इस हमले को साहित्यकार बड़ी गंभीरता से ले रहे हैं। यही कारण है कि बड़ी संख्या में नये-नये रचनाकार आ रहे हैं। व्यापक संख्या में पत्रिकाएं छप रही हैं। बड़े पैमाने पर सोशल मीडिया से नयी पीढ़ी जुड़ रही है। अपनी भावनाओं को आपस में मिलाया जा रहा है। विश्लेषण-विवेचन का नया रास्ता बनाने का प्रयास कारगर बनता नजर आने लगा है। वैसे हजारों-हजार सवाल भी उठाये जा रहे हैं। कभी उसकी गंभीरता पर सवाल खड़े होते हैं, तो कभी उसकी मर्म वस्तु को लेकर संदेह पैदा होता है। इस संदेह पर नजर दौड़ाये बिना ही उसे कभी-कभी अफवाह मान लिया जाता है।

वर्तमान में आलोचना प्रक्रिया को जीवनोन्मुख बनाना सबसे कठिन रचना-कर्म है। समाज को आलोचना से काटने का प्रयास किया जा रहा है। यदि आलोचना की प्रक्रिया कुंद होती है, तो सामाजिक क्षरण को रोकना कठिन हो जाता है। हर नयी चीज को सामाजिक क्षरण कहने का नया फैशन बन जाता है। इससे समाज का भारी नुकसान होता है। जब तक उस नुकसान को समझने की काबलियत अर्जित की जाती है, तब तक गंगा में कितना पानी इधर से उधर बह निकलता है। आलोचना किसी कीमत पर विमर्श नहीं हो सकती है। आलोचना की अपनी धरती है तथा उसकी अपनी थाती है। आलोचना पर वर्चस्ववादियों का कब्जा है। सृजनकर्त्ता इस कब्जे के विरुद्ध लगातार लड़ते हैं। कभी उन्हें सफलता मिलती है, कभी वे असफल होते हैं। साहित्य का क्षेत्र सफलता-अफसलता पर निर्धारित नहीं होता है। वैसे आज कल आलोचना को जीवन से काटने की चेष्टा की जाती है। आलोचना को ऐतिहासिक संदर्भ से पूरी तरह अलग-थलग कर दिया जाता है तथा आलोचना को दार्शनिक भावना से लैस करने के नाम पर प्रभुओं को खुश करने की प्रवृत्ति अपनायी जाती है। इसके चलते तरह-तरह की बाधाएं उत्पन्न होती हैं।

साहित्य को जब इतिहास और दर्शन से अलग कर दिया जायेगा, तब साहित्य सिर्फ 'कथनी' बन जायेगा। साहित्यकार यदि कथनी का शिकार हो जायेंगे, तो समाज की समस्याओं का समाधान खोजना मुश्किल होना स्वाभाविक है। हर सृजन को 'करनी' बनाने का जोखिम उठाने का सवाल एक ज्वलंत चुनौती है। यदि साहित्य संदेश को सामने रखता है, तो उसे कथनी पर नहीं करनी पर भरोसा करना होगा। विश्व के पैमाने पर आलोचना को कथनी का दर्जा देने की साजिश की जा रही है, ताकि दर्शक सिर्फ देखता रहे तथा पाठक सिर्फ पढ़ता रहे। आज भी भक्ति आंदोलन से सम्बन्धित साहित्य अपनी करनी के बल पर

Scanned by CamScanner

प्रासंगिक है। रामकथा साहित्य आज की समस्याओं का निरूपण करने में सफल साबित हुआ है, जबकि उत्तर आधुनिकता ने विचार के नाम पर बवन्डर पैदा किया है। इस डिजिटल-युग की समस्याओं का विवेचन किस तरह से किया जाय, इसका 'उत्तर' उत्तर-आधुनिकता के पास नहीं है। इसके बारे में यही कहा जाता है कि उत्तर-उत्तर आधुनिकता का युग आरंभ हो चुका है।

साहित्य के बड़े-बड़े पंडित इस उत्तर-उत्तर आधुनिक युग का सही विवेचन उस हिम्मत के साथ नहीं कर पाते हैं, जिस हिम्मत के साथ उन्हें अपना दम दिखाना चाहिए। वर्तमान समय में चारों तरफ दम दिखाने की प्रतियोगिता चलती नजर आ रही है। जो जीत गया वही सिकंदर है और जो हार गया उसके बारे में कौन सोचेगा। इस हारे हुए व्यक्ति की जिम्मेदारी कौन लेगा –साहित्य और साहित्यकार के अलावा कौन दूसरा है, जो उनकी जिम्मेदारी ले। साहित्य हमेशा दायित्व का निर्वाह करता है। यह काम सृजनशीलता के जरिये सम्पन्न होता है। जो रचनाकार समाज के प्रति प्रतिबद्ध हैं, उनकी प्रतिबद्धता समाज को नयी दिशा देती है। समाज को आगे बढ़ने के लिए आलोचकीय मानदंड का निर्धारण नितांत जरूरी है।

साहित्य की आलोचना पद्धति को बनाने के लिए युगीन चेतना से लैस करना जितना आवश्यक है, ठीक उतना ही जनता की इच्छा-आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए ठोस कदम उठाना जरूरी है। यही कारण है कि साहित्य सिर्फ प्रवृत्तियों की व्याख्या नहीं करता है, बल्कि प्रवृत्तियों के मूल स्त्रोत को पकड़ता है। जैसे रोग के निदान के लिए प्रवृत्तियों के विश्लेषण की अपेक्षा उसके मुख्य स्त्रोत को पकड़ना जरूरी है। साहित्य के समक्ष आज एक बड़ी चुनौती यह पैदा हो गयी है कि कुछ विद्वान उसे व्याख्यान बनाने में जुट गये हैं, तो कुछ बुद्धिमान उसे प्रवचन बनाने के लिए अपना खून पसीना एक किये हुए हैं, इसलिए कि व्याख्यान और प्रवचन से गाढ़ी कमाई मिलती है, जहां सिर्फ विवरणात्मक मिथ्याचार को तरजीह दी जाती है। हृदय छूने के नाम पर कृत्रिम हृदय बनाने की बात की जाती है। संघर्ष को नासमझी का पर्याय बनाने की कसरत आज तेज हुई है।

मानव जीवन के सामने चुनौतियां उत्पन्न हुई हैं, जो साहित्य में फलित हुई हैं। इस संदर्भ में यह चर्चा होती है कि साहित्यकारों को कहां से देखना चाहिए। जब देखने के संज्ञान की चर्चा होती है, तब यही स्थापित किया जाता है कि साहित्य मुनाफे का सौदा नहीं है और जहां मुनाफा ही एकमात्र मानदंड बन गया हो, वहां साहित्य का मूल्यांकन किस आधार पर होगा, यह एक विचाराधीन सवाल है। यह सच है कि साहित्य फतवा नहीं है। साहित्यिक जगत के पेड़ों में फरमान से फल नहीं लगते या तलवार तान लेने से ही परिवर्तन नहीं होते, बल्कि परिवर्तन की पूर्व शर्तें होती हैं, उन शर्तों को पूरा करने के लिए समाज अपना रचनाकार पैदा करता है। जब सत्ता के गलियारे से साहित्यकार आता है, तब उसमें चमक-दमक निश्चित तौर

Scanned by CamScanner

पर विद्यमान होती है। वहाँ विमर्श का तूफान खड़ा किया जाता है, नयेपन के नाम पर कूड़ा परोसा जाता है।

परिवर्तन को बिना सोचे-समझे अपनाना किसी कीमत पर अच्छा नहीं है, हालांकि चाहे जितना अच्छा 'आने' का प्रचार क्यों न किया जाय। इसलिए कि साहित्य भविष्य की 'गंगा' को स्वच्छ करने पर ज्यादा ध्यान देता है, क्योंकि साहित्य 'करनी' के जरिये जनमानस का भविष्य उज्ज्वल बनाता है। जब तक कथनी को साहित्यिक जामा पहनाकर रखा जायेगा, तब तक किसी हाल में सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का सही मूल्यांकन नहीं होगा। और सही मूल्यांकन नहीं करने के चलते भ्रम पैदा होता है। खासकर वर्तमान समय में जितने भ्रम पैदा हो रहे हैं, उनकी जड़े विमर्श से जुड़ी हुई हैं।

विमर्श सामाजिक यथार्थ पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए सामाजिक गतिशीलता पर लगाम लगाने का प्रयास करता है; पूरे समाज को एक खोल में बंद करने की चेष्टा करता है। इसलिए विगत दिनों में जितने तरह के विमर्श उठाये गये हैं, उन तमाम किस्म के विमर्शों के जरिये उन समुदायों को किसी तरह का खास लाभ नहीं मिला, जिन समुदायों के नाम पर विमर्श उठाये गये थे, वे धीरे-धीरे मंद पड़ गये। आज उन विमर्शों की ठंडी राख बची हुई है; साहित्य के कुछ 'नागा बाबा' उस राख को अपने शरीर में लेप कर भरतमुनि के दर्शन के लिए गंगा सागर में भीड़ जमा करते हैं या कुंभ नहाने के लिए गंगा में डूब मारते हैं। उन नागा बाबाओं ने इतनी डूब लगायी कि गंगा को भी स्वच्छ करने का मामला थोड़ा आजकल गरम हो गया है। कभी किसी कथनी को करनी में बदलने के लिए संघर्ष करना पड़ता था। यदि कहा जाता था कि साहित्यिक संतन को पैसे की क्या जरूरत है, तो वे संतन अपने जीवनकर्म में उसे उतार लेते थे और आज कथनी को जीवन में नहीं उतारा जाता है। बल्कि उसे जीवन-कर्म से बाहर निकालकर फेंका जाता है। इसके चलते भी साहित्य के समक्ष चुनौतियां उत्पन्न हो चुकी हैं। उन चुनौतियों से मुठभेड़ करने से रास्ता निकलता है। दरअसल रास्ता बनाना पड़ता है।

साहित्यिक जगत में रास्ता बनाना एक तरह से कठिन और जटिल प्रक्रिया के बीच से गुजरना है। इस रास्ते पर स्वाधीन चेता व्यक्ति आगे बढ़ते हैं। साहित्य के सामने जितनी तरह की चुनौतियां उत्पन्न होती हैं, उन तमाम तरह की चुनौतियों का मुकाबला अनुभव के आधार पर किया जाता है, जिसके लिए लगातार अभ्यास किया जाता है। जीवन में अभ्यास की अपनी पहचान है। अभ्यास की रंगत जब दिखती है, तब प्रतिभा सामने आती है और साबित किया जाता है कि अमुक रचनाकार ने अपनी प्रतिभा की बदौलत युग की सच्चाइयों को न केवल समझा बल्कि उन सच्चाइयों को सार्वजनिक बनाया। सबको लेकर साथ चलने का पहला अध्याय सबको जोड़ना है। यदि साहित्य का कोई बैनर इस कार्य में जुट गया, तो उसकी जय-यात्रा को रोकना किसी के वश की बात नहीं है। जय-यात्रा पर निकले पथिक का

Scanned by CamScanner

शंखनाद सदा मानवीय मूल्यों की रक्षा करता है, जो शब्दों के चमत्कार पर विश्वास नहीं करता है।

सच्चे अर्थों में चमत्कार जीवन नहीं है। जीवन का रस सहजता में विद्यमान है। साहित्य एक तरह से जीवन का रस है, जो सदा अपनी अक्षुण्णता के लिए प्रसिद्ध है। मानव-सभ्यता को जीवन ही नया आयाम देता है, जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य के जरिये होती है। हर संकट को बड़ी सहजता के साथ लेकर साहित्य उपस्थित होता है तथा जनता की भागीदारी को समाज में स्थापित करता है। साहित्यिक चर्चाएं कभी कहीं अटकती नहीं हैं बल्कि मानव-जीवन के रास्ते को और चौड़ा करती हैं। उन चर्चाओं को यथार्थवादी नजरिये से देखने की जरूरत है। सही अर्थों में जीवन का सच्चा अनुभव ही साहित्य का असल प्राण है।

मानव सभ्यता की गति साहित्य के जरिये संचालित और नियंत्रित होती है। इस संचालन और नियंत्रण के बारे में जब-जब प्रश्न उठते हैं, तब-तब एक नया मुकाम बनता है। यही मुकाम साहित्यिक कर्मों की उपलब्धियां हैं, उन उपलब्धियों को लेकर विकास-पथ पर समकालीन साहित्य की जय-यात्रा जारी है। इस यात्रा में समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्ति शामिल हो रहे हैं। विगत हजारों सालों से मानव सभ्यता कठिन डगर पर चलने का एक उन्मेष है। समकालीन साहित्य ने जन-जीवन की दिनचर्या को स्थापित किया है। अतीत के अनुभवों के आधार पर समकालीन साहित्य ने जिस तरह अनुशीलन शुरू किया है, उस अनुशीलन के जरिये सारी चुनौतियों का न केवल मुकाबला किया जा सकता है बल्कि एक विवेकवान विकल्प की स्थापना संभव है। इन्हीं संभावनाओं को रेखांकित करना तथा उन्हें हकीकत का जामा पहनाना साहित्यकर्मियों का फर्ज है। इस मर्म को समझना तथा समझाना वर्तमान की मांग है; इस मांग की आपूर्ति ही गतिशील-ऊर्जावान विकल्प की शानदार प्रस्तुति है। यही प्रस्तुति मानव और मानवता का ध्वजावाहक है, जहां चुनौतियां आत्मसमर्पण करती नजर ही नहीं आती हैं बल्कि मानवीय मूल्यों की मांग के आधार पर अपना रुख बदलने के लिए मजबूर हैं। यही सृजन की ताकत है। इसी ताकत के बल पर यह कहना नितांत जरूरी है कि सृजन का विकल्प सृजन है, जो मानव-सभ्यता को सदा ऊर्जस्वित करता रहा है और भविष्य में भी घोर तूफानों में दीया जलाने का अदम्य साहस रखता है।

ΩΩΩ

Scanned by CamScanner